पंचम अध्याय

"अलका सरावगी के उपन्यास : देशकाल वातावरण सृष्टि की कलात्मकता का मूल्यांकन"

पंचम अध्याय

"अलका सरावगी के उपन्यास : देशकाल वातावरण सृष्टि की कलात्मकता का मूल्यांकन"

विषय-प्रवेश :

वस्तुतः किसी भी कृति का कलात्मक मूल्यांकन करने के लिए, पात्रों में स्वाभाविकता लाने के लिए, कथानक को स्पष्ट करते समय साधन के रूप में, वास्तविकता को दर्शाने के लिए, समाज में व्याप्त राजनीति को जानने के लिए, महानगरों की स्थिति को जानने के लिए तथा विशिष्ट काल की परिस्थिति या पृष्ठभूमि को जानने के लिए देशकाल वातावरण सृष्टि की आवश्यकता होती है।

देशकाल वातावरण में स्थान, काल के साथ-साथ राजनीतिक, धार्मिक, सामाजिक, ऐतिहासिक, आर्थिक और महानगरीय आदि वातावरण का चित्रण अंतर्निहित होता है। इन वातावरण के अंतर्गत राजनेताओं की स्वार्थांधता तथा पदलोलुपता, समाज में व्याप्त रूढ़ि, परंपरा, मान्यता, अंधविश्वास, पूँजीपति एवं मजदूर वर्ग की आर्थिक स्थिति, समाज में व्याप्त वर्णाश्रम - व्यवस्था, साम्य-वैषम्य, वर्ग-संघर्ष, मनुष्य-जीवन की संगति-विसंगति, रहन-सहन, रीति-रिवाज तथा खान-पान, महानगर की अलगाववादी संस्कृति, एकाकीपन, वासना केंद्रित प्रवृत्ति बिखराव, टूटन, कुंठा तथा भागदौड़ आदि का चित्रण दिखाई देता है।

देशकाल वातावरण में सामाजिक, धार्मिक तथा राजनीतिक परिस्थिति के साथ समाज की कुरीतियों का भी चित्रण मिलता है। डॉ. प्रतापनारायण टंडन के अनुसार - "देशकाल के अंतर्गत किसी भी देश या समाज की सामाजिक, धार्मिक, राजनैतिक परिस्थितियाँ, आचार-विचार, रहन-सहन, रीति-रिवाज तथा समाज की कुरीतियाँ या विशेषताएँ आदि समझी जाती हैं।"[1] कहना आवश्यक नहीं कि देशकाल वातावरण की सृष्टि में सामाजिक परिस्थितियों के साथ-साथ समाज की विशेषताएँ भी चित्रित होती हैं। निष्कर्षतः कहना सही होगा कि देशकाल वातावरण की सृष्टि में स्थान तथा काल के साथ-साथ सामाजिक, ऐतिहासिक, महानगरीय, आर्थिक तथा राजनीतिक वातावरण का चित्रण अवश्य होता है।

---

1. डॉ. प्रतापनारायण टंडन - हिंदी उपन्यासों में कथा-शिल्प का विकास, पृष्ठ - 87

अलका सरावगी के उपन्यासों में देशकाल वातावरण सृष्टि का कलात्मकता के साथ निर्वाह हुआ है। अध्ययन की सुविधा हेतु उनके उपन्यासों में चित्रित वातावरण को पाँच भागों में विभाजित किया है, जैसे -

1. सामाजिक वातावरण
2. ऐतिहासिक वातावरण
3. महानगरीय वातावरण
4. आर्थिक वातावरण और
5. राजनीतिक वातावरण आदि।

1. सामाजिक वातावरण

सामाजिक वातावरण के अंतर्गत काल तथा स्थान के साथ-साथ समाज की दशा-दिशा, पक्ष-विपक्ष, रीति-रिवाज, तौर-तरीके, वेशभूषा, भाषा, रहन-सहन, शिक्षा तथा संस्कृति आदि का चित्रण आवश्यक होता है। डॉ. प्रतापनारायण टंडन ठीक ही लिखते हैं - ''सामाजिक जीवन से संबंध रखनेवाले सभी वर्णन वेशभूषा, भाषा, रीतिरिवाज, सामाजिक शिक्षा, संस्कृति, व्यापार आदि इसके अंतर्गत आते हैं।''[1] कहना आवश्यक नहीं कि सामाजिक वातावरण में समाज के सभी सम-विषम परिस्थितियों का चित्रण होता है।

स्वाधीनता पूर्वकाल में समाज अनेक रूढ़ि-परंपरा से ग्रस्त था, जैसे - बाल-विवाह, सती-प्रथा, परदा-प्रथा, दहेज-प्रथा, विधवा विवाह और अनमेल विवाह आदि। लेकिन स्वाधीनता प्राप्ति के बाद इस रूढ़ि-परंपरा में समाज सुधारक शिक्षा, पाश्चात्य संस्कृति, औद्योगिक क्रांति तथा वैज्ञानिक प्रगति आदि के कारण समाज में परिवर्तन दिखाई देने लगा है। डॉ. अर्जुन चव्हाण स्वाधीनता प्राप्ति के बाद समाज में आए हुए बदलाव के बारे में लिखते हैं - ''आजादी के पश्चात् का भारतीय समाज अपने पूर्ववर्ती समाज से अलग है। शिक्षा का प्रसार, सुधारवादी आंदोलन, पाश्चात्य संस्कृति से संपर्क, आधुनिक चिंतनधारा, औद्योगिक क्रांति, वैज्ञानिक प्रगति आदि के कारण एक नया समाज सामने आया। शिक्षा तथा नए विचारों के प्रचार-प्रसार ने युवा पीढ़ी के प्राचीन रुढ़ियों और परम्पराओं के प्रति विद्रोह के लिए प्रेरित किया। इस पीढ़ी को लगा कि परंपरागत मूल्य और आदर्श उसकी समस्याओं का समाधान करने में असमर्थ है। उसकी दृष्टि में परंपरा, रीति-रिवाज, आदर्श आदि निरर्थक है।''[2]

---

1. डॉ. प्रतापनारायण टंडन - हिंदी उपन्यासों में कथा-शिल्प का विकास, पृष्ठ - 88
2. डॉ. अर्जुन चव्हाण - राजेंद्र यादव के उपन्यासों में मध्यवर्गीय जीवन, पृष्ठ - 57

कहना आवश्यक नहीं कि रूढ़ि-परंपरा तथा रीति-रिवाज का चित्रण नयी युवा पीढ़ी के लिए निरर्थक होने के बावजूद भी रचनाकार अपनी रचनाओं में सामाजिक वातावरण का चित्रण करता हुआ दिखाई देता है। क्योंकि उनका प्रधान लक्ष्य है - हमारे समाज में सुधार लाना। बीसवीं सदी के अंतिम दशक के हिंदी उपन्यासकारों ने अपने काल के परिवेश को समाज सुधार हेतु अपनी रचना के माध्यम से वाणी देने का काम किया है। अलका सरावगी के उपन्यास इसी काल की देन हैं। उनके उपन्यास में सामाजिक वातावरण का चित्रण पर्याप्त मात्रा में मिलता है।

हमारे यहाँ समाज सुधारकों ने सती प्रथा बंद करने हेतु, अंधविश्वास को दूर करने हेतु और विधवा विवाह को मान्यता देने हेतु अनेक प्रयास किए हैं लेकिन भारतीय पुरूष की पुरुषी मानसिकता यह मानने को तैयार नहीं होती। अलका सरावगी के 'कलि-कथा : वाया बाइपास' उपन्यास में इसी स्थिति का जिक्र मिलता है। प्रस्तुत उपन्यास का शांतनु ईश्वर को मानता नहीं है, साथ ही वह अपने मित्र किशोर को भी ईश्वर को न मानने की सलाह देता है। जब वह विधवा शांता भाभी की शादी करने की सलाह देता है तब किशोर उसे कहता है कि इस सृष्टि में ईश्वर के पास भी न्याय नहीं है। परिणामत: शांतनु गुस्सा प्रकट करते हुए कहता है - "बेवकूफ हो तुम, एकदम पगला, कोई ईश्वर नहीं है। ईश्वर चाहिए तुम्हे? तुम खुद नहीं बन सकते अपने ईश्वर? जीवन में दुर्घटनाएँ होती हैं। मुझे भी तुम्हारे ललित भैया के मरने का बहुत दु:ख है। लेकिन न्याय, ईश्वर, नियति - यह सब बातें मेरे सामने हैं। यह बीसवीं शताब्दी है माई डियर। नाइन्टीन हान्डरेड एंड फोर्टी! ... तुम्हारे मारवाड़ियों में भी पहला विधवा हुए तेरह साल हो गए हैं। तुम क्या चाहते हो - तुम्हारी भाभी का जीवन कैसा हो? तिल-तिलकर जलते हुए वह सती हो?"[1] शांतनु का यह कथन सति प्रथा तथा अंधविश्वास को दूर करने तथा विधवा-विवाह को मान्यता देने का संदेश देता है, जो सामाजिक वातावरण की कलात्मकता का दूयोतक है।

हमारे यहाँ हर कार्य के पहले ईश्वर की पूजा करना शुभ माना जाता है। यह बात हमने दूसरों तक मतलब अंग्रेजों तक भी पहुँचाई है। परिणामत: अंग्रेज लोग ही हमें ईश्वर की पूजा करने के लिए कहने लगे हैं। इसका प्रमाण 'कलि-कथा : वाया बाइपास' में मिलता

---

1. अलका सरावगी - कलि-कथा : वाया बाइपास, पृष्ठ - 17

है। प्रस्तुत उपन्यास का रामविलास जब अपने पिताजी की चिट्ठी लेकर 'हैमिल्टन एंड कंपनी' में हैमिल्टन साहब से मिलने जाते हैं तब वे उन्हें काम पर लेते हैं क्योंकि उनके पिता ने हैमिल्टन साहब के पिता की जान बचाई थी। हैमिल्टन साहब उन्हें काम सीखाकर हिसाब बिठाने के लिए कहते हैं। काम की शुरुआत से पहले काली देवी की पूजा भी करने के लिए कहते हैं - ''यह कलिकाता है मेरे दोस्त - काली का देश। यहाँ आनेवाले को पहले काली की पूजा देनी पड़त है। तुम्हारे पिता ही मेरे पिता की ओर से हर साल कालीघाट में पूजा करके आते थे।''[1] हैमिल्टन साहब के कथन से स्पष्ट होने में देर नहीं लगती कि अंग्रेजों के मन में भी काली देवी के प्रति प्रेम या आदर था। अत: कहना होगा कि प्रस्तुत कथन सामाजिक वातावरण की पुरजोर हिमायत करता है।

संसार में स्त्री-पुरूषों के बीच आदिम आकर्षण के कारण कई जातियाँ 'मिश्रित खून' की बन गई है। परिणामत: शहरों का भी विभाजन काला शहर तथा गोरा शहर में हो गया है। इन 'मिश्रित खून' के लोगों के पास अंग्रेजों की छोड़ी जमीन-जायदाद भी होती है। इनकी हालत बुरी होने के कारण इनकी संताने छोटे-मोटे कारखानों में काम करती हैं। अलका सरावगी के 'कलि-कथा : वाया बाइपास' उपन्यास में इसी वातावरण का चित्रण मिलता है। प्रस्तुत उपन्यास के हैमिल्टन साहब इसका सशक्त उदाहरण है। वे अपने जैसे मिश्रित खून के लोगों की हालत बताते हैं - ''सोलह हजार मिश्रित खून के लोगों के पीछे ऐसी ही तरह-तरह की कहानियाँ होंगी - किसी की माँ हिंदू रही होगी, किसी की मुसलमान। ऐसे जोड़ो के बीच आपस में कैसे संबंध होते होंगे? उत्तर कलकत्ता के 'काले शहर' और दक्षिण कलकत्ता के 'गोरे शहर' के बीच ये युरेशियन लोग रहते हैं - बीच का बहू बाजार और चौरंगी के पिछवाड़े का इलाका ऐसी ही औरतों से भरा है जिनके पास अंग्रेजों की छोड़ी हुई जमीन-जायदाद संपत्ति है। अधिकतर रेल, टेलिग्राफ, छोटे-मोटे कारखानों में इनकी संतानें काम करती हैं।''[2] हैमिल्टन साहब का यह कथन अंग्रेज काल के बाद के 'मिश्रित खून' के लोगों की सामाजिक दशा अर्थात् सामाजिक वातावरण का परिचय देता है।

सच बात यह है कि हमारे यहाँ का उच्चवर्गीय समाज मनपसंद चीजे खाता है और पीढ़ी-दर-पीढ़ी एक ही व्यवसाय को अपनाता है लेकिन निम्नवर्गीय समाज भूखा का

---

1. अलका सरावगी - कलि-कथा : वाया बाइपास, पृष्ठ - 37
2. वही, पृष्ठ - 47

भूखा मर जाता है। अलका सरावगी के 'कलि-कथा : वाया बाइपास' उपन्यास में इसी स्थिति का जिक्र मिलता है। प्रस्तुत उपन्यास का नायक किशोरबाबू जियागंज के मारवाड़ियों के बारे में सोचते हैं - "जियागंज में मारवाड़ियों का कपड़े और किराने का बड़ा व्यवसाय है, जो पिछले डेढ़-दो सौ सालों से उनके हाथों में पीढ़ी-दर-पीढ़ी चलता आया है। यहाँ के मारवाड़ियों के भोजन में पटलेर दोरमा (परवल भरवां) मोचा घण्ट (केले के फूल की सब्जी), थोर (केले की सफेद जड़ से बननेवाली तली हुई चीज) सब शामिल हो गया है - 'ये लोग हम लोगों से भी बढ़िया बनाते हैं। चड़चड़ी (सूखी पत्तियों की तली सब्जी) और तेलेर भाजा (सब्जियों की तली हुई पकौड़ी)' - कालिदास कहता है। इनकी मिठाइयां तो बस दिव्य हैं - मोटी-मोटी बादाम की कतलियां, राजभोग, हलुआ, पेठा खाने की शुरुआत ही ये मिठाइयों से करते हैं।"[1] उक्त कथन से स्पष्ट होता है कि मारवाड़ी लोगों के खान-पान रईस लोगों का खान-पान है। वे पीढ़ीगत व्यवसाय करते हैं। कहना सही होगा कि प्रस्तुत कथन सामाजिक वातावरण की कलात्मकता को सिद्‌ध करता है।

वस्तुत: विवाह करना एक ओर इन्सान के मन में आनंद या खुशी पैदा करता है तो दूसरी ओर लड़की की विदाई के कारण दु:ख। हर समाज में अपनी-अपनी पद्‌धति से विवाह किए जाते हैं। अलका सरावगी के 'कलि-कथा - वाया बाइपास' उपन्यास में ऐसे ही मारवाड़ी समाज के शादी-ब्याह का चित्रण मिलता है। प्रस्तुत उपन्यास में मारवाड़ी ओसवाल परिवार की अपूर्व सुंदरी चांद के शादी-ब्याह के रीति-रिवाज के बारे में लेखिका लिखती हैं - "चांद की कुछ महिने पहले पूरे बैंड-बाज के साथ दहेज का शहर में घुमाकर प्रदर्शन करते हुए शादी हुई है। वह ब्याही गई है बीकानेर में। कालिदास शादी के एक सप्ताह पहले बार-बार हर नेगचार पर मुहल्ले के मंदिर में बैंड-बाजे के साथ जाने-आने का विवरण खूब हंस-हंस कर सुनाता है। किंतु चांद की विदाई के समय होनेवाले भयंकर क्रंदन की बात बताते हुए उसकी आँखे डबडबा जाती हैं।"[2] प्रस्तुत कथन से मारवाड़ी समाज में धूम-धाम से होनेवाले शादी-ब्याह का चित्रण मिलता है जो सामाजिक वातावरण का परिचय देता है।

समाज का एक घिनौना पक्ष है - वेश्यावृत्ति। समाज में बढ़ती महँगाई, बेकारी, अकेलापन, टूटन के कारण कुछ नवयुवतियों को वेश्या बनकर अपना जीवन व्यतीत करना पड़ता है। ये वेश्याएँ हर रात किस्म-किस्म के लोगों का इंतजार करती हुई दिखाई देती

---

1. अलका सरावगी - कलि-कथा : वाया बाइपास, पृष्ठ - 131
2. वही, पृष्ठ - 131

हैं। साथ ही सज-धजकर हमेशा अपनी ही झुंड में रहती हैं। असुरक्षितता उसके जीवन का अहम भाग है। ये वेश्याएँ अमीरजादे लड़कों-पुरुषों की गाड़ियों में या होटल के कमरों में रूपयों के अनुपात में मजा या सुख देती है। अलका सरावगी का 'शेष कादम्बरी' उपन्यास इसका प्रमाण है। प्रस्तुत उपन्यास की मायाबोस जैसी वेश्या का जीवन, उनकी खड़ी होने की जगह तथा उनके रहन-सहन का चित्रण करते हुए लेखिका लिखती है - ''रोज रात को थिएटर रोड़ में अरविन्द आश्रम के बन्द दरवाजे के बाहर सज-धजकर खड़ा होना है - वन-वे रास्ते में पूर्व दिशा से आती गाड़ियों की तरफ अपना मुँह किए। जैसे किसी की प्रतीक्षा कर रही हो - मानो अभी-अभी कोई लेने के लिए आनेवाला हो। रूबी दी ने कई बार काली घाटवाले आदिगंगा के पुल से अलीपुर जाती हुई औरतों को इसी तरह इन्तजार करते हुए देखा है, पर वे हमेशा एक झुंड में होती हैं। एक-दूसरे से कुछ दूरी पर खड़ी हुई। पीछे पुल के नीचे उनकी खोली-झुग्गियाँ काली मंदिर तक फैली हुई दिखती हैं। पर माया बोस नितान्त अकेली और अनिकेत दिखती है। शायद इसीलिए उसे देखकर रूबी दी को हमेशा इसके लिए एक तरह का डर लगा है - कहाँ से आकर यह यहाँ अरविन्द आश्रम के बाहर खड़ी होती है, कौन इसे कहाँ ले जाता है और कहाँ छोड़ता है? कितनी असुरक्षित है यह औरत काली घाटवालियों की तुलना में - अलबत्ता गेहुएँ रंग को गहरे रंग की गाढ़ी लिपस्टिक से चमकाती, कटे बाल और कान की बड़ी-बड़ी बालियों से फैशनेबल दिखने में प्राय: कामयाब होती, उन लोगों से कितनी ज्यादा टिप-टॉप ! अमीर-जादे लड़कों-पुरुषों को गाड़ियों में या होटल के कमरों में उन्हें रुपयों के अनुपात में मजा या सुख देती हुई।''[1] उक्त उद्‌धरण से समझने में देर नहीं लगती कि समाज में वेश्याएँ अपनी दयनीय स्थिति के कारण रुपयों के अनुपात में अमीर लड़कों-पुरुषों तथा किस्म-किस्म के लोगों को अपना जिस्म बेचती हैं।

इन वेश्याओं की खड़ी होने की जगह भी तय होती है, जिसके कारण लोग उनको तुरंत पहचानते हैं। इसी उपन्यास की मायाबोस जब अखबार में 'परामर्श' संस्था का विज्ञापन पढ़कर परामर्श लेने आती है तब रूबी दी तुरंत पहचानती है - ''थिएटर रोड़पर खड़ी होनेवाली लड़की के रूप में पहचान लिया था। बहूबाजार के रेड़लाइट एरिया में वेश्याओं के लिए स्कूल चलानेवाली अपनी सहेली नीना को एक बार उन्होंने उसके बारे में बताया भी था।

1. अलका सरावगी - शेष कादम्बरी, पृष्ठ - 60

तभी रूबी दी को पता चला था कि इन लोगों के खड़े होने की जगह तय होती है - धर्मतल्ला, कालीघाट, न्यू मार्केट, बेहाला ... और ये आद्या कहलाती हैं। रोज कलकत्ते के आसपास के कस्बों से आने-जानेवाली ठौर-ठिकान रहित वेश्याएँ।''[1] उपर्युक्त उद्धरण से कलकत्ते के विभिन्न स्थानों में खड़ी रहनेवाली वेश्याओं का चित्र आँखों के सामने खड़ा होता है जो तत्कालीन सामाजिक वातावरण का द्योतक है।

आज-कल समाज में तांत्रिक लोगों का प्रभाव बढ़ता हुआ दिखाई देता है। ये तांत्रिक लोग समाज के भोले-भाले लोगों को अपने चंगुल में फँसाकर मनचाहा लाभ उठाते रहते हैं। वे अपने मोह के लिए बलि जैसी अनेक कुप्रथाएँ समाज में न केवल निर्माण करते हैं बल्कि रूढ़ भी करते हैं जिसके कारण खून की नदियाँ बहती हैं। अलका सरावगी का 'शेष कादम्बरी' उपन्यास इसी मानसिक स्थिति को प्रस्तुत करता है। उपन्यास की सविता कलकत्ता आने पर उन्हें किन परिस्थितियों से गुजरना पड़ता है तथा तांत्रिक लोग किस प्रकार लाभ उठाते हैं, उसके बारे में कहती है - ''मेरे कलकत्ता लौटने के बाद नियम से रोज कालीघाट ले जाते मुझे। कीचड़ में सने काले पाँवों से पसीने से गन्धाते पंडितों और भक्तों के बीच घुमाते रहते। वहीं एक तान्त्रिक के फेर में पड़ गए। मारन-मोहन-उच्चाटन-स्तम्भन और न जाने क्या क्या बोलते रहते। कभी सुने नहीं थे पहले ये शब्द। वह सब फेल हो गया, तो तान्त्रिक ने कहा कि बकरे की बलि लगेगी। बताइए, शाकाहारी लोग कोई बलि देते हैं ऐसे? पर माने नहीं। ले गए मुझे भी। चारों तरफ खून-ही-खून।''[2] सविता के इस कथन से कलकत्ते के समाज में फैले अंधविश्वास, रूढ़ी तथा प्रथा के माध्यम से सामाजिक वातावरण का परिचय मिलता है।

हमारे यहाँ हिंदू-मुस्लिम दंगे हमेशा होते रहते हैं। उन्नीस सौ बानबे में हुआ बाबरी मस्जिद ध्वंस उन्हीं में से एक है। इस घटना के कारण समाज में दंगे-फसाद होते रहें। इस घटना के परिणाम का चित्रण अलका सरावगी के 'शेष कादम्बरी' उपन्यास में मिलता है। प्रस्तुत उपन्यास की रूबी दी जब सविता का दु:ख, दर्द तथा पीड़ा सुनती है तब उन्हें उन्नीस सौ बानबे में खुले आकाश के नीचे बैठे तथा सुनी आँखोंवाला आदमी मनोरंजन व्यापारी की याद आती है। तब वह सोचती है कि ''उन्नीस सौ बानबे की तो बात है। वे 'वामा स्टडी ग्रुप' के साथ टेंगरा के बस्ती इलाके में रीलीफ पहुँचाने गई थीं। मस्जिद गिराने की घटना के बाद हुए

---

1. अलका सरावगी - शेष कादम्बरी, पृष्ठ - 61
2. वही, पृष्ठ - 70

दंगे में जलाए-तोड़े हुए घरों से कहीं-कहीं उठते हुए धुएँ के बीच अपने घर की गायब छत की जगह से बरसती सूरज की धूप में वह चुपचाप अकेला बैठा था। औरतें, बूढे, बच्चे, जवान सब अपनी बातें कह रहे थे - ''मुँह - अँधेरे इलाके के नामी गुंडों में पुलिस का हिन्दू अफसर भी शामिल था उन लोगों के घरों में आग लगाने में। पर वह अकेला सन्नाटा फैलाता हुआ बिना छत के घर में उजड़ी ईटों के बीच नि:स्पन्द बैठा था।''[1] 'शेष कादम्बरी' उपन्यास का यह उद्धरण सांप्रदायिकता के कारण उजड़े हुए घरों की दुरावस्था तथा सामाजिक तान-तनाव को स्पष्ट करता है।

संसार में स्त्री-पुरूष के स्वाभाविक आकर्षण के कारण 'मिक्स ब्लड' जातियों का निर्माण हुआ है। ये जातियाँ पूरे विश्व में फैल गई। उनमें से एक है 'एंग्लो इंडियन' जाति, जो भारत में हमेशा उपेक्षित रही है। समाज में उनका स्तर गिर गया है। अलका सरावगी का 'कोई बात नहीं' उपन्यास इसका प्रमाण है। प्रस्तुत उपन्यास का जतीनदा शशांक का एंग्लो इंडियन मित्र आर्थर के परिवार के बारे में पूछता है लेकिन शशांक को उसके परिवार के बारे में कुछ पता न होने के कारण वह चुप बैठता है तब जतीन दा इन 'मिक्स्ड ब्लड' जातियों के बारे में कहता है - ''दुनिया में जहाँ जहाँ 'मिक्स्ड ब्लड' की जातियाँ हैं, एशिया, अफ्रीका, साउथ अमेरिका - चाहे उनमें अंग्रेज का खून मिला हो या फ्रेंच या डच या स्पेनिश या पोर्तुगीज - कोई और जाति इतनी घाटे में नहीं रही है जितनी भारत की एंग्लो-इंडियन जाति। सिंड्रेला की कहानी पढ़ी है न? भारत के एंग्लो-इंडियन अंग्रेजों से सिंड्रेला जैसी बदसलूकी पाते रहे। ज्यादा-से-ज्यादा उन्हें या तो रेलवे में या टेलिग्राफ में नौकरियाँ मिलती थीं, जबकि श्रीलंका के उनके जैसे लोग जज, मैजिस्ट्रेट, चीफ इंजीनियर और न जाने क्या-क्या बने हुए थे। इसलिए आज भी एंग्लो-इंडियन आम तौर पर गरीब का गरीब रह गया है।''[2] जतीन दा का यह कथन विभिन्न स्थानों की 'मिक्स्ड ब्लड़' जातियों का खासकर एंग्लो-इंडियन जाति के समाज की दयनीय दास्तान प्रस्तुत करता है।

वस्तुत: समाज दो वर्गों में बँटा है - एक उच्चवर्ग और दूसरा निम्नवर्ग। उच्चवर्ग समाज में शान-शौकत से जीवन जीता है और दूसरा वर्ग बदतर जिंदगी जीने के लिए विवश है। अलका सरावगी के 'कोई बात नहीं' उपन्यास में ऐसे ही समाज का चित्रण मिलता है। प्रस्तुत

---

1. अलका सरावगी - शेष कादम्बरी, पृष्ठ - 71
2. अलका सरावगी - कोई बात नहीं, पृष्ठ - 46

उपन्यास की चाची और उसके सारे भाई-बहन अपने ही घर में अपने ही चचेरे भाई-बहनों की तुलना में दूसरे दर्जे के नागरिक बनकर जीते थे। स्वयं शशांक के चाची के शब्दों में - "वे लोग पढ़े साउथ के इंग्लिश-मीड़ियम स्कूलों में और हम लोग नार्थ कलकत्ता के हिंदी मीड़ियम स्कूलों में। वे लोग स्कूल जाते गाड़ियों में, हम लोग जाते पैदल। वे लोग हिल स्टेशन घूमने जाते, हम लोग जाते दादा-दादी के साथ तीर्थ-स्थानों में। वे लोग पहनते नई फैशन के कपड़े, हम लोग पहनते बहनजी-टाइप कपड़े।"[1] शशांक के चाची का यह कथन उसके बचपन के काल की सामाजिक विषमता का परिचय देता है।

सार यह कि अलका सरावगी ने सामाजिक वातावरण में कलकत्ते के विभिन्न स्थानों तथा काल के चित्रण के साथ-साथ सती-प्रथा, बलि-प्रथा, दहेज-प्रथा, अंधविश्वास तथा पूजा-पाठ आदि बातों का पर्दाफाश किया है। साथ ही मारवाड़ी समाज के खान-पान, रीति-रिवाज, शादी-ब्याह और रहन-सहन आदि बातों का चित्रण कलात्मकता से किया हुआ दृष्टिगोचर होता है।

5.2 ऐतिहासिक वातावरण :

रचनाकार जब वर्तमान को समझाने या आनेवाले कल के बारे में सचेत करने के लिए बीते हुए कल के जरिए ऐतिहासिक स्थान तथा काल के दूवारा वातावरण निर्वाह करता है तब उसे 'ऐतिहासिक वातावरण' नाम से अभिव्यक्ति मिलती है। ऐतिहासिक वातावरण में सिर्फ भूत का चित्रण नहीं होता है बल्कि भूत के साथ-साथ वर्तमान की स्थिति तथा भविष्य का भी संकेत मिलता है। यह संकेत अनेक घटना तथा प्रसंगों के माध्यम से होता है। साथ ही ऐतिहासिक वातावरण में ये संकेत अनेक बातों दूवारा दिया जाता है, जैसे - ऐतिहासिक स्थान, काल, शहर, मंदिर, किलों, गढ़ी, ऐतिहासिक घटना, परिणाम, भौगोलिक तत्त्व, चरित्र, आर्थिक दशा, लोगों का स्वभाव, सामाजिक गठन, राजवंश, जनता की स्थिति-गति, रहन-सहन, आचार-विचार, तौर-तरिके और वेशभूषा आदि तत्कालीन चीजों तथा बातों दूवारा ऐतिहासिक वातावरण का रचनाकार उचित निर्वाह अपनी रचनाओं में करता है।

अत: कहना सही होगा कि ऐतिहासिक वातावरण में स्थान तथा काल के साथ-साथ ऐतिहासिक घटना, प्रसंग, पात्र, शहर, यथार्थता और कल्पना का समन्वय तथा

---

1. अलका सरावगी - कोई बात नहीं, पृष्ठ - 138

भविष्य का दिशानिर्देश होता है। बीसवीं सदी के अंतिम दशक के महिला उपन्यासकारों के उपन्यासों में ऐतिहासिक वातावरण का चित्रण पर्याप्त मात्रा में मिलता है। अलका सरावगी के उपन्यास इसके प्रमाण हैं। अलका सरावगी के 'कलि-कथा : वाया बाइपास' उपन्यास में ज्यादा तर कलकत्ता तथा मारवाड़ी समाज का सामाजिक-सांस्कृतिक इतिहास है। प्रबोधकुमार के शब्दों में "अलका सरावगी का उपन्यास कलकत्ते का और बंगाल में बसे मारवाड़ियों का सामाजिक-सांस्कृतिक इतिहास है।"[1] कहना आवश्यक नहीं कि अलका सरावगी 'कलि-कथा : वाया बाइपास' उपन्यास में कलकत्ता तथा बंगाल के सामाजिक-सांस्कृतिक इतिहास का चित्रण दिखाई देता है।

यह एक ऐतिहासिक सत्य है कि मीरजाफर अपने स्वार्थ सिद्धि के लिए या सत्ता हथियाने के लिए या पदलोलुपता के कारण सिराजुद्दौला अंग्रेजों के इस लड़ाई में भाग जाता है। सिराजुद्दौला नहीं चाहता था कि अँग्रेज यहाँ आकर राज करें। इसी कारण वह मीरजाफर के सामने अपनी पगड़ी उतारकर रखता है, खून के रिश्ते की, दादा अलीवर्दी खां के एहसानों की तथा सैयद जाति की परंपरा की दुहाई देता है लेकिन मीरजाफर नहीं मानता। परिणामत: सिराजुद्दौला हार जाता है। अलका सरावगी के 'कलि-कथा : वाया बाइपास' उपन्यास में इसी वातावरण का चित्रण मिलता है। प्रस्तुत उपन्यास का किशोरबाबू जब बड़ा बाजार की लाइब्रेरी में जाकर सत्यपालजी के पास अपने इतिहास की प्लासी की लड़ाई तथा सिराजुद्दौला के बारे में जानने की इच्छा व्यक्त करता है तब सत्यपालजी उसे एक फाईल दिखाते हैं जिसमें गुलाम हुसैन-सियर-अल-मुल्खरीन ने सन् 1780 में सिराजुद्दौला के बारे में जानकारी दी थी कि "23 जून, 1757। नवाब सिराजुद्दौला की सेना की मुख्य कमानें मीरजाफर, यारलुत्फ खान और राय दुर्लभ के हाथों में थीं। ये तीनों षड्यंत्र में शामिल होने के कारण नहीं लड़े। सिर्फ मोहनलाल और मीरमदन की टुकड़ियाँ लड़ाई में उतरी। मीर मदन के जख्मी होने पर सिराजुद्दौला ने मीरजाफर को अपने तंबू में बुलाया। पगड़ी उतार कर उसके सामने रख उसे अपने खून के रिश्ते की, अपने दादा अलिवर्दी खां के अहसानों की और सैयद जाति की परंपरा की दुहाई देते हुए पुराने झगड़े को भूलने के लिए कहा। मीरजाफर के लड़ने के लिए राजी होने पर सिराजुद्दौला ने उसी के कहने पर मोहनलाल को जबर्दस्ती लड़ाई के मुकाम

1. सं. गिरधर राठी - समकालीन भारतीय साहित्य, द्वैमासिक, जुलाई-अगस्त, 1998, पृष्ठ - 183

से वापस बुलवाया। मोहनलाल को लौटता देख सारी सेना सिर पर पैर रखकर भागी, जबकि कोई पीछा नहीं कर रहा था। अंतत: सिराजुद्दौला का भी दिमाग फिर गया और उसने भी भागने का फैसला किया।''[1] उक्त उद्धरण से स्पष्ट होता है कि अलका सरावगी के 'कलि-कथा : वाया बाइपास' उपन्यास में ऐतिहासिक वातावरण दृष्टिगोचर होता है।

हमारे यहाँ देश तथा शहर के इतिहास के साथ-साथ अपने-अपने खानदान का भी इतिहास लिखा गया। वे लोग जिस स्थान में रहते हैं उस स्थान तथा परिवेश से उनका इतिहास जुड़ा होता है। अलका सरावगी के 'कलि-कथा : वाया बाइपास' उपन्यास में इसी स्थिति का जिक्र मिलता है। प्रस्तुत उपन्यास के डॉ. राय के परिवार का इतिहास इसका सशक्त उदाहरण है। शांतनु अपने पिता डॉ. राय से नफरत करता है। किशोर उसे समझाते हुए कहता है तुम्हारे पिता इस दुनिया में नहीं रहेंगे तो तुम्हें अफसोस हो जाएगा। तब शांतनु अपने पिता डॉ. राय के बारे में कहता है - ''डॉ. राय हमारे खानदान का इतिहास लिख रहे हैं - अढ़ाई सौ वर्ष पुराना इतिहास। माँ के सामने से ही उनका यह काम चालू था। इसी परिवार के साथ जुड़ा हुआ है इस कलकत्ते शहर का इतिहास - जिससे मेरे दादा नफरत करते थे। हमारे परिवार का इतिहास जॉब चार्नक के कलकत्ता शहर बसाने के पहले का इतिहास है। तुम्हें अच्छा लगता है न सुनना? जॉब चार्नक कलकत्ता बसाने के पहले जब बंगाल में मारा-मारा बेसहारा फिर रहा था, तब यहाँ के स्थानीय जागीरदार राय 'मजूमदार' यानी हमारे परदादाओं ने उसे अपनी कचहरी में पनाह दी थी। उसने अपने कागज-पत्तर हमारे यहां ही रख छोड़े थे। वह सियालदह के पास प्रसिद्ध 'बैठकखाना' वृक्ष, जो एक विशाल पीपल का पेड़ था, के नीचे हुक्का पीते हुए हमारे खानदानी दादा से यह सलाह किया करता था कि अंग्रेजों की बस्ती कहां बसानी चाहिए। बाद में उसी पेड़ से प्रेम होने के कारण उसने कलकत्ता शहर यहां बसाया।''[2] डॉ. राय के इस कथन के द्वारा मानो लेखिका ने डॉ. राय के खानदान के इतिहास के साथ-साथ, कलकत्ते शहर की उपज का ही इतिहास रेखांकित किया है। किशोरबाबू के परिवार का भी इतिहास कलकत्ते के इतिहास को जुड़ता है। डॉ. मंजुरानी सिंह के शब्दों में - ''यहाँ तक कि शांतनु जो किशोर का दोस्त है उसके परिवार का भी कई पीढ़ियों का इतिहास है। कलकत्ते में बल्कि यों कहे कि कलकत्ते का आरंभिक इतिहास जुड़ता है उसके परदादाओं के इतिहास से।''[3] डॉ.

---

1. अलका सरावगी - कलि-कथा : वाया बाइपास, पृष्ठ - 22
2. वही, पृष्ठ - 101-102
3. सं. गोविंद मिश्र - अक्षरा, त्रैमासिक, जुलाई-सितंबर, 1999, पृष्ठ - 105

मंजुरानी सिंह हा यह कथन शांतनु तथा किशोरबाबू के परिवार के इतिहास के साथ-साथ कलकत्ते शहर के इतिहास का भी परिचय देता है।

हमारे यहाँ अनेक आंदोलन हुए, 'भारत छोड़ो आंदोलन' उन्हीं में से एक है। इसी आंदोलन को मिटाने के लिए अंग्रेजों ने गांधी तथा नेहरू जैसे नेताओं को भी गिरफ्तार किया था। अलका सरावगी के 'कलि-कथा : वाया बाइपास' उपन्यास में यही स्थिति रेखांकित है। जब किशोरबाबू रविवार को डलहौसी से बालीगंज आ रहा था तब उन्होंने देखा कि विप्लवी रासबिहारी बोस की बड़ी-सी मूर्ति के ललाटपर एक सफेद रंग का लंबा तिलक लगा हुआ है। तिलक को देखकर वह सोचता है कि इतनी ऊँची मूर्ति के माथे पर तिलक किसने लगाया होगा, तब उसे स्वामी रामानंद कृष्ण की याद आती है। वह एकाएक पचास साल से भी पीछे चला जाता है, जैसे - ''उन्नीस सौ बयालीस के 'भारत छोड़ो आंदोलन' के दिनों की बात है। सुभाषबाबू तो सन् इकतालिस में ही भारत छोड़कर काबुल होते हुए जर्मनी और फिर बाद में सिंगापुर चले गए थे। गांधी-नेहरू वगैरह सब नेता गिरफ्तार थे।''[1] कहना आवश्यक नहीं कि उक्त उद्धरण से लेखिका ने सन् 1942 को अर्थात् 'भारत छोड़ो आंदोलन' के ऐतिहासिक वातावरण को कलात्मकता से रेखांकित किया है।

कई लोग इतिहास के लिए खुद को जिम्मेदार मानते हैं लेकिन सच बात तो यह होती है कि उसके लिए उनके पुरखे जिम्मेदार होते हैं। इसी कारण उन्हें तानाकशी भी सहनी पड़ती है। परिणामत: वे विनम्रता और शालीनता से व्यवहार करते हैं। अलका सरावगी के 'कलि-कथा : वाया बाइपास' उपन्यास में इसी वातावरण की पहल दिखाई देती है। प्रस्तुत उपन्यास में जब अजीम गंज से इधन जियागंज के एड्वर्ड कॉरोनेशन हाईस्कूल में पढ़ने के लिए जगतसेठ के दो वारिस आते हैं तब शांतनु बताता है - ''स्कूल में जब-तब लड़के उन पर तानाकशी करते हैं कि उनके कारण सिराजुद्दौला हारा। ये विश्वासघाती हैं। वे कभी इस बात का जवाब नहीं देते। सब से बहुत विनम्रता और शालीनता से बात करते हैं। शायद वे अपने रक्त में मौजूद इतिहास के लिए खुद को जिम्मेदार मानते हों।''[2] शांतनु का यह कथन सिराजुद्दौला के काल की याद दिए बिना नहीं रहता। प्रस्तुत कथन से ऐतिहासिक वातावरण की कलात्मकता दिखाई देती है।

---

1. अलका सरावगी - कलि-कथा : वाया बाइपास, पृष्ठ - 112-113
2. वही, पृष्ठ - 130

सन् 1850 (अठराह सौ पचास) में अफीम के कारण कई शहर बन गए हैं। कलकत्ता शहर का बनना भी इसी का परिणाम कहना होगा। अफीम के पैसे के कारण यह शहर 'सिटी ऑफ पॅलेसेस' बन गया। इतना ही नहीं कलकत्ते के अफीम को बढ़ावा देने के लिए मालवा की अफीम पर अंग्रेजों ने बहुत बड़ा टैक्स लगा दिया। उसी समय प्लेग के डर से भी कई परिवार आ बसे। अफीम का बढ़ना और प्लेग के डर, दोनों के परिणामस्वरूप कलकत्ता शहर बन गया। अलका सरावगी के 'शेष कादम्बरी' उपन्यास के मिस्टर वियोना अपनी किताब 'इंडियन पीप शो' के सातवें और नौंवे अध्याय के बारे में हमेशा बात करते हैं लेकिन आठवें अध्याय के बारे में कभी बात नहीं करते। एक दिन उसी आठवें अध्याय का रहस्य खुल जाता है जिस दिन रूबी पूछती है अफीम की यह बात कितनी पुरानी है तब मिस्टर वियोना कहते हैं - "उन्नीसवीं शताब्दी की शुरुआत की बात है, यानी अभी से करीब एक सौ चालीस साल पहले ... 'अठारह सौ तीस में ब्रिटिश सरकार ने बंगाल की अफीम को बढ़ावा देने के लिए मालवा की अफीम पर बहुत बड़ा टैक्स लगा दिया। तब कलकत्ते में बसना ज्यादा फायदेमन्द हो गया। वैसे भी असली ताकत तो यहीं थी। इसके अलावा प्लेग के डर से भी बहुत-से परिवार पश्चिम बंगाल से पूरब की ओर आ बसे' ... 'अठारह सौ पचास' तक तुम्हारे खानदान के दफ्तर कलकत्ता, मालवा, बंबई, मिर्जापुर, फार्रुखाबाद, पटना के अलावा चीन तक में खुल गए थे। तब तक कलकत्ते से बाहर भेजी जानेवाली चीजों में एक-तिहाई हिस्सा अफीम का हो चुका था क्योंकि चीन में अफीम की बहुत माँग थी। सच पूछो तो कलकत्ते को बनाया ही अफीम ने। उसी से इतना पैसा यहाँ आया। यह शहर अठारह सौ पचास तक 'सिटी ऑफ पैलेसेस' बनने लगा - पुराना हाईकोर्ट, सेंट जॉन चर्च, गवर्नमेंट हाऊस, राइटर्स बिल्डिंग, इंडियन म्यूजियम - कलकत्ते की ये सारी भव्य इमारतें उसी समय के आसपास बनी हुई हैं।"[1] मिस्टर वियोना का यह कथन अठारह सौ पचास में अफीम के कारण कलकत्ते का बनना तथा उस काल के ऐतिहासिक वातावरण की कलात्मकता को रेखांकित करता है।

भारत और पाकिस्तान के बीच आज तक कई युद्ध हो गए हैं। सन् 1965 का युद्ध उन्हीं में से एक है। इस युद्ध में लाल बहादुर शास्त्री का नाम तथा 'जय जवान जय किसान' का नारा हर बच्चे के जबान पर था। अलका सरावगी के 'शेष कादम्बरी' उपन्यास में

---

1. अलका सरावगी - शेष कादम्बरी, पृष्ठ - 47

इसी युद्‌ध की स्थिति का जिक्र मिलता है। प्रस्तुत उपन्यास की रूबी दी कादम्बरी ने भेजा हुआ 'एक अदृश्य आदमी' नामक रिपोर्ट पढ़ती है तब रूबी दी को वह घटना जैसी की वैसी याद आती है - "हे भगवान ! क्या इतिहास इस तरह अपने को दोहराता है? रूबी दी को वह घटना ऐसी-की-ऐसी याद है जैसे कल की बात हो - 1965 के भारत-पाक युद्‌ध के बाद की बात है जब लालबहादुर शास्त्री का नाम और 'जय जवान जय किसान' देश के बच्चे-बच्चे की जुबान पर था।"[1] स्पष्ट है कि उक्त कथन में रचनाकार ने भारत-पाक युद्‌ध का परिचय देकर ऐतिहासिक वातावरण की निर्मिति की है।

स्वाधीनता प्राप्ति की घटना भारत के इतिहास की एक महत्त्वपूर्ण घटना मानी जाती है। भारत आजाद होने पर अंग्रेज तो चले गए, लेकिन सबसे ज्यादा तकलीफ एंग्लो-इंडियन लोगों को हो गई। अंग्रेज जब थे तब ये लोग हिंदुस्तानियों को 'हिकारत' से देखते थे। उन्हें अंग्रेज लोग 'अधबीच' में ही धोखा देकर चले गए। अलका सरावगी के 'कोई बात नहीं' उपन्यास में इसी बात का चित्रण मिलता है। प्रस्तुत उपन्यास का प्रदीप ऑस्ट्रा अपने ज्यादातर रिश्तेदारों की तरह ऑस्ट्रेलिया में जीवन बीताने का ख्वाब देखता है तब जतीन दा कहते हैं - "भारत आजाद हुआ और अंग्रेज भारत छोड़कर जाने लगे तो सबसे ज्यादा तकलीफ ऐसे लोगों को हुई थी जो अंग्रेजों का रक्त अपने शरीर में होने के कारण अपने को अंग्रेज मानते थे और अपने खून की हिंदुस्तानियत को हिकारत से देखते थे। इन लोगों को यह अंदाज नहीं था कि अंग्रेज उन्हें अधबीच ऐसा धोखा देकर चल देंगे।"[2] जतीन दा का यह कथन अंग्रेजों की धोखाधड़ी का परिचय तो देता है, साथ ही 'एंग्लो-इंडियन' लोगों की वास्तविक स्थिति का परिचय देता है।

दुनिया के इतिहास पलट कर देखने पर पता चलता है कि तमाम देशों पर राज करनेवाला एक आदमी था और वह है हिटलर। उसके कहने पर उसके अनुयायी ने यहुदियों को चुन-चुनकर मारा था। परिणामत: कैम्प-के-कैम्प श्मशान हो गए थे। अलका सरावगी का 'कोई बात नहीं' उपन्यास इसी ऐतिहासिक वातावरण का प्रमाण है। प्रस्तुत उपन्यास के जतीन दा शशांक को यह नहीं बताते कि शीर्षेन्दु को किसने मारा था, क्यों मारा था और उस

---

1. अलका सरावगी - शेष कादम्बरी, पृष्ठ - 99
2. अलका सरावगी - कोई बात नहीं, पृष्ठ - 24-25

मारनेवाले को सजा दिलवाई या नहीं। तब शशांक जतीन दा पर गुस्सा होता है, उसे लगता है - क्या वे मुझे अंतर्यामी समझते हैं कि जो बिना बताए सारी बाते समझ ले। तब जतीन दा उसके मन की बात भाँप लेते हैं और कहने लगते हैं - ''दुनिया का इतिहास पलटकर देखो, तो यह कभी समझ में नहीं आएगा कि अपनी सभ्यता को श्रेष्ठ मानकर दुनिया के तमाम देशों पर राज करनेवाले यूरोप में हिटलर जैसा एक आदमी हुआ जिसके कहने पर चुन-चुनकर यहूदी लोगों का शिकार किया गया। उन्हें क्या-क्या यातनाएँ नहीं दी गई। कैसे उनके कैम्प-पर-कैम्प श्मशान बना दिए गए। कैसे समझाया हिटलर ने अपने साथियों को, कि ऐसा करना एकदम सही है? और कैसे मान लिया उन लोगों ने?''[1] जतीन दा के कथन से मानो लेखिका ही बोल रही है कि दुनिया में बुरे कृत्य करनेवाले लोग किस प्रकार के होते हैं और उनके अनुयायी भी इस बुरे कृत्य को करना कैसे मानते हैं? कहना सही होगा कि उपर्युक्त उद्धरण में हिटलर के समय का ऐतिहासिक वातावरण कलात्मक दृष्टिगोचर होता है।

निष्कर्षत: कहना होगा कि ऐतिहासिक वातावरण में विभिन्न देशों, कलकत्ते के विभिन्न स्थानों तथा आजादी के पहले और बाद के समय का चित्रण कलात्मक रूप में दिखाया है। साथ ही तत्कालीन लोगों की सत्ता प्राप्ति की होड़, पदलोलुपता, धोखाधड़ी, कलकत्ते शहर का इतिहास, युद्ध के कारण तथा परिणामों को विवेच्य उपन्यासों में कलात्मक पद्धति से प्रस्तुत किया है।

5.3 महानगरीय जीवन :

महानगरीय वातावरण में स्थान तथा काल के साथ-साथ महानगर के विविध पक्ष-विपक्ष का चित्रण अंतर्निहित होता है। रचनाकार जिस वातावरण को देखता है तथा भोगता है उसे अपनी रचना का प्रतिपाद्य बनाने का प्रयास करता है। महानगरीय वातावरण में शासकीय उद्योग, केंद्रीय स्थल, राजनीतिज्ञों की जातिवादी मानसिकता, उनकी मतलबी तथा भ्रष्टाचारी वृत्ति, अवैध व्यावसायिकता तथा गुंडों को प्रश्रय देने की प्रवृत्ति, फिल्मी माहौल, वेश्यावृत्ति, बनावटीपन, युवापीढ़ी की दिशाहीनता, कर्तव्यहीनता, मानसिक जड़ता, संत्रास, पीड़ा, छात्रों का संगठन और मध्यवर्गीय लोगों के जीवन की पीड़ा आदी का चित्रण मिलता है।

---

1. अलका सरावगी - कोई बात नहीं, पृष्ठ - 209

महानगर में रहनेवाले इन्सान में वैयक्तिकता, टूटन, घुटन, अकेलापन, अजनबीपन, बनावटीपन, नीरसता, विद्रोह, कुंठा तथा दमन आदि प्रवृत्तियाँ दिखाई देने लगी है। जिसके कारण महानगरों को भ्रष्टाचार, अधिकारियों की मनमानी, राजनीतिज्ञों का झूठा व्यवहार, असुरक्षा, वेश्या-गमन की प्रवृत्ति, मदिरा का व्यापार, जीवन मूल्यों की टूटन, आपसी बिखराव, आवास, भीड़ (ट्रैफिक जाम), गंदगी, झूठे रिश्ते और झगड़े आदि समस्याओं का सामना करना पड़ता है। ये समस्याएँ महानगरीय वातावरण में प्रबल मात्रा में दिखाई देने लगी हैं। परिणामत: बीसवीं सदी के अंतिम दशक के महिला उपन्यासकारों के उपन्यासों में महानगरीय वातावरण का चित्रण पर्याप्त मात्रा में मिलता है। अलका सरावगी के उपन्यासों में भी महानगरीय वातावरण का जिक्र स्थान-स्थान पर हुआ है। उनके उपन्यासों में चित्रित महानगरीय वातावरण का विवेचन-विश्लेषण यहाँ प्रस्तुत है -

मूलत: महानगर एकसंघ रहते थे लेकिन विदेशी आक्रमण के कारण उनमें बिखराव नजर आता है। अंग्रेजों ने भारत में 'फूट डालो और राज करो' नीति को अपनाकर राज किया। उन्होंने कलकत्ते शहर को भी काले शहर और गोरे शहर के रूप में विभाजित किया। अलका सरावगी के 'कलि-कथा : वाया बाइपास' उपन्यास में इसी वातावरण का जिक्र मिलता है। प्रस्तुत उपन्यास के डॉ. राय का परिवार कलकत्ते के सब से पुराने परिवारों में से एक हैं, जिन्हें जंगल साफ करनेवाले जमींदारों के रूप में जाना जाता है। जब अंग्रेज कलकत्ता आए तब अधिकांश जंगल का भाग साफ कर वहाँ गोरे शहर का निर्माण किया। शांतनु के पिता डॉ. राय कहते हैं - ''अठारहवीं शताब्दी के मध्य तक कलकत्ता फोर्ट विलियम अढ़ाई सौ एकड़ के फैलाव के अंदर यूरोपियनों, आरमेनियनों और पुर्तगाली क्रिश्चियनों के रहने का घिरा हुआ स्थान बन गया था, जिसे 'गोरे शहर' के रूप में जाना जाता था। इसके बाहर नदी के मुहाने से करीब साढ़े तीन मील उत्तर तक 'नेटिव' या 'काला शहर' बसा था और इन दोनों भागों को घेरती हुई 'मराठा खाई' थी जो मराठों के आक्रमण से कलकत्ते को बचाने के लिए बनाई गई थी।''[1] उक्त कथन से स्पष्ट होता है कि कलकत्ते का अंग्रेजों के आगमन के कारण काले शहर और गोरे शहर में विभाजन हो गया था जो महानगरीय वातावरण का द्योतक है।

---

1. अलका सरावगी - कलि-कथा : वाया बाइपास, पृष्ठ - 98

हमारे यहाँ युद्ध बार-बार होते रहे हैं, जिसके कारण इन्सान में टूटन तथा बिखराव नजर आ रहा है। इन्सान अपना शहर छोड़ने के लिए तैयार नहीं होता लेकिन युद्ध के भयानक माहौल के कारण शहर छोड़ने को मजबूर होता है। अलका सरावगी का 'कलि-कथा : वाया बाइपास' इसका प्रमाण है। प्रस्तुत उपन्यास में दूसरे महायुद्ध के समय शहर की हुई दशा के बारे में लिखा है - "शहर छोड़कर कौन कहाँ जा सकता है - किसके परिचित, रिश्तेदार कलकत्ता के बाहर हैं जो थोड़े दिनों के लिए पनाह दे सकें। किशोर और मां को बड़े मामा के दूसरे ससुराल फर्रूयाबाद जाना है, भाभी को अपने मायके कानपुर, शांतनु को मुर्शिदाबाद, अमोलक को वर्धा। बहुत से मारवाड़ी राजपूताना जा रहे हैं - अपने देस।"[1] उक्त उद्धरण से समझने में देर नहीं लगती कि युद्ध के कारण महानगरों में बिखराव की स्थिति दिखाई देने लगी है जो महानगरीय वातावरण का परिचय देती है।

मनुष्य हर परिस्थिति, हर समस्या तथा कठिनाइयों का सामना करता हुआ जीवन जीता है, लेकिन जब शांति के बदले आतंक का माहौल निर्माण होता है तब इन्सान शहर छोड़कर दूर-दूर भाग जाता है। अलका सरावगी के 'कलि-कथा : वाया बाइपास' उपन्यास में इसी स्थिति का चित्रण मिलता है। प्रस्तुत उपन्यास के किशोर को युद्ध का माहौल देखकर एहसास होता है कि "सन् इकतालीस के साल का अंतिम महीना आते-आते जपान के अमेरिका और इंग्लैंड पर आक्रमण कर देने से आतंक इतना बढ़ गया कि कलकत्ते के लोगों के पास शहर खाली करने के अलावा कोई चारा नहीं रह गया था।"[2] उक्त अवतरण से स्पष्ट होता है कि युद्ध के कारण आतंक बढ़ता है और आतंक के कारण महानगरीय बिखराव। कहना आवश्यक नहीं कि यहाँ महानगरीय वातावरण की निर्मिति हुई है।

परिवर्तन समाज का नियम है। यह परिवर्तन व्यष्टि-समष्टि, गाँव-शहर तथा नगरों-महानगरों में भी दिखाई देने लगा है। लेकिन यह परिवर्तन की मात्रा अब महानगरों में बढ़ गई है, जिसके कारण महानगरों में बदलाव आ रहा है। लेकिन कुछ चीजें ऐसी होती हैं जो जैसी की वैसी रह जाती है। अलका सरावगी के 'शेष कादम्बरी' उपन्यास में इसी प्रसंग को रेखांकित किया है। इसी उपन्यास की सायरा जब अपना हाथ-मुँह धोकर आती है, तिपाई लाती है उस

1. अलका सरावगी - कलि-कथा : वाया बाइपास, पृष्ठ - 118
2. वही, पृष्ठ - 119

पर रूबी दी पैर रखती है। सायरा पाँव दबाती है लेकिन रूबी दी को रोज की तरह नहीं लगता, वह रोज की तरह सो भी नहीं पाई थी। वह बार-बार सोचती है कि, ''आज ऐसा क्या है जो बरसों-बरस से चलती एक जैसी जिंदगी के क्रम से अलग है। समय बदला तो बहुत है - उनका चेहरा ही नहीं, शहर तक का चेहरा बदल गया है, पर फिर भी बहुत कुछ ऐसा है, जो जैसा-का-जैसा रह गया है। विक्टोरिया मैदान और रेसकोर्स के वैसे-के-वैसे खुलेपन को छोड़ बाई तरफ मुड़ने पर अलीपुर को ले जानेवाला आदिगंगा के ऊपर बना पुराना 'बेलिस' पुल अब 'ताज बंगाल' होटल के कारण दुगुना बड़ा और नया हो गया है।''[1] कहना सही होगा कि महानगरों में अब कुछ बदलाव जरूर आया है तो कुछ वैसा-का-वैसा रह गया है जो महानगरीय वातावरण का दृयोतक है।

वस्तुत: हमारे यहाँ जंगलों का विकास होने के बजाय सिमेंट के जंगलों का विकास ज्यादा हुआ दिखाई देता है। जिसके परिणामस्वरूप महानगरों में भव्य-भव्य इमारतों की भीड़ नजर आ रही है। अलका सरावगी के 'शेष कादम्बरी' उपन्यास की रूबी गुप्ता को रोज की तरह नहीं लगता तब उसे सविता तथा वासुमणि की याद आती है। वह सोचती रहती है कि, ''आज ऐसा कैसे हुआ कि उनकी एम्बेसेडर गाड़ी आदिगंगा का पुल पार कर चिड़ियाखाना, नेशनल लाइब्रेरी, हार्टीकल्चर गार्डन और पुराने भव्य महलनुमा मकानों के बीच उगी विशालकाय मल्टी स्टोरीड़ बिल्डिंगों को पार करती हुई उन्हें घर ले आई थी।''[2] उपर्युक्त कथन से स्पष्ट होता है कि आज महानगरों में भव्य महलनुमा मकान तथा जंगलों के समान बढ़ रही इमारतें महानगर की समस्या बन बैठे हैं। अत: कहना होगा कि महानगरीय वातावरण का उचित निर्वाह 'शेष कादम्बरी' उपन्यास में हुआ है।

सच यह है कि महानगरीय समाज में आज भी जातिभेद बुरी तरह पनप रहा है। जातिभेद के आधार पर समाज में अनेक इलाके भी होते हैं, जिनके नाम भी जाति पर निर्भर दिखाई देते हैं, जैसे - मारवाड़ी, गुजराती, मुसलमानी और चीनी आदि। ठीक उसी प्रकार का वातावरण अब स्कूलों में भी दिखाई देता है। अलका सरावगी का 'कोई बात नहीं' उपन्यास इसी स्थिति का प्रमाण है। प्रस्तुत उपन्यास के शशांक को स्कूल में आते ही उसे रास्ते में सुनी

1. अलका सरावगी - शेष कादम्बरी, पृष्ठ - 25
2. वही, पृष्ठ - 27

हुई गीत की कड़ियाँ याद आती है। साथ ही उन्हें यह भी याद आता है कि, ''रॉबिन, साइमन, केल्विन, विलियम, फिलिप, एंथनी और वही अपना मोटा आर्थर ! एक नजर में उसने इतने लड़कों को देख लिया। आगे बंगाली और फिर मारवाड़ी 'इलाका' है, इस खयाल से उसे हँसी आई। कितनी अजीब बात है कि आज तक सोचा ही नहीं था कि क्लास में सब के अपने-अपने मोहल्ले हैं। ठीक उसी तरह, जैसे कलकत्ते में भवानीपुर गुजराती इलाका है, बड़ाबाजार मारवाड़ी इलाका, पार्क सर्कस - इन्टाली मुसलमानों का, टैंगरा चीनियों का।''[1] इससे यह स्पष्ट होता है कि महानगर में विभिन्न जाति के लड़के होते हैं जो स्कूल में आते ही सभी समानता का व्यवहार करते हैं। अत: कहना गलत नहीं होगा कि यहाँ महानगरीय वातावरण का परिचय मिलता है।

आवास की समस्या महानगर की सब से बड़ी समस्या बन गई है। महानगरों में जगह की कमी के कारण छोटे-छोटे मकानों की जगह 'मल्टीस्टोरीड' मकानें दिखाई दे रही हैं। अत: यह 'मल्टीस्टोरीड' मकानों में होनेवाली यह फ्लैट की जिंदगी, झगड़े तथा गंदगी जैसी समस्या को जन्म देती है। अलगा सरावगी के 'कोई बात नहीं' उपन्यास में इसी स्थिति का जिक्र मिलता है। प्रस्तुत उपन्यास के शशांक को लगता है कि, ''कितना अच्छा होता की कलकत्ता भी मल्टीस्टोरीड़ मकानों की जगह आकाश न रोक कर छोटे-छोटे मकानों का शहर होता। तब न उनके कोई ऊपर रहता और न नीचे कोई रहता। ऊपर के फ्लैट के बरामदे से कोई उनके बरामदे में सूखते कपड़ों पर धान या पान-मसाले की पीक जब-तब थूक देता है। माँ-दादी ने कई बार ऐसे कपड़े रामा से ऊपर भिजवाकर उन लोगों को दिखाया है कि किस तरह कपड़े खराब हो गए हैं, पर हर बार रामा यहीं जवाब लाया है - वो लोग बोलता है कि उन लोगों का घर में कोई पान-मसाला, पान खाइबेडई नहीं करता है' तो क्या आसमान पीक थूकता है उन कपड़ों पर?''[2] उक्त उद्धरण महानगर की नारकीय जीवन का परिचय देता है। आज महानगरों में 'मल्टीस्टोरीड' मकानों के कारण फ्लैट की संस्कृति विकसित हो गई है। परिणामत: आवास, गंदगी तथा झूठापन आदि समस्याएँ पैदा होती हैं जो महानगरीय वातावरण का दृयोतक है।

---

1. अलका सरावगी - कोई बात नहीं, पृष्ठ - 18
2. वही, पृष्ठ - 82

हमारे यहाँ के महानगरों में ट्रैफिक जाम की समस्या एक आम बात बन गई है। जिसके कारण हर इन्सान को अपना बहुमूल्य समय गँवाना पड़ रहा है, घंटों इंतजार करना पड़ता है। ऐसा लगता है कि पूरी उम्र इस इंतजार में बीत जाएगी। अत: आदमी में इसी स्थिति के कारण क्रोध बढ़ गया है। अलका सरावगी के 'कोई बात नहीं' उपन्यास में इसी स्थिति को रेखांकित किया हुआ दिखाई देता है। प्रस्तुत उपन्यास के शशांक को अचानक मौसी की कहानी याद आती है। इस कहानी में एक ही घटना थी। कहानी शुरू होती थी - ''एक ट्रैफिक जाम के वर्णन से, जो कलकत्ता में एक आम बात है। ट्रामें चुप, गाडियाँ चुप, सब के शरीरों से बहता हुआ चिपचिपाता पसीना और बेबस क्रोध। ऐसा लगता कि पूरी उम्र बीत जाएगी इस इंतजार में कि गाड़ियाँ हिलें और आगे बढ़ें।''[1] उक्त उद्धरण से महानगर में होनेवाली ट्रैफिक जाम की समस्या, उसके कारण होनेवाला समय का अपव्यय, क्रोध तथा आवाज आदि समस्याएँ महानगरीय वातावरण का परिचय देती हैं।

निष्कर्षत: कहना गलत नहीं होगा कि विवेच्य उपन्यासों में लेखिका ने विभिन्न देशों के विभिन्न कालों का तथा महानगरों में होनेवाला भेदभाव, टूटन, बिखराव, आतंक, परिवर्तन, आपसी व्यवहार तथा 'मल्टीस्टोरीड' मकानों के कारण फ्लैटों की जिंदगी के कारण निर्माण होनेवाली गंदगी, आवास तथा झूठापन आदि बातों को कलात्मकता के साथ रेखांकित किया हैं।

5.4 आर्थिक वातावरण :

आर्थिक वातावरण में स्थान तथा समय के साथ-साथ तत्कालीन समाज या लोगों की आर्थिक परिस्थिति का चित्रण होता है। अर्थ की महत्ता के कारण अर्थ की विषमता बढ़ती जा रही है, जिसके कारण समाज में दोन वर्ग बन गए हैं - एक पूँजीपति और दूसरा मजदूर। इन मजदूरों को गरीबी, बेकारी, महँगाई, भ्रष्टाचार, असमानता, शोषण, मुनाफा और धोखाधड़ी के कारण आर्थिक समस्या का सामना करना पड़ता है, जिसका चित्रण लेखक आर्थिक वातावरण में करता है।

---

1. अलका सरावगी - कोई बात नहीं, पृष्ठ - 201

आजादी के बाद कई योजनाओं का क्रियान्वयन किया गया, लेकिन इन योजनाओं का लाभ पूँजीपति तथा राजनीतिज्ञों ने ही ज्यादा उठाया। इसी कारण समाज में खाई और बढ़ती गई। अमीर- अमीर होता गया और गरीब-गरीब होता गया। परिणामत: आर्थिक सत्ता सेठ, साहूकार, पूँजीपति, शोषक, धनिक, मुनाफाखोर, महाजन तथा सत्तासीन लोगों के हाथ में चली गई जिसके कारण अर्थ ही जीवन का मूल्य बन गया है। ऐसे समाज में कर्तव्य तत्परता, न्याय, निष्ठा, तथा सत्य आदि का स्वाभाविक रूप में लोप होता गया। परिणामत: व्यक्ति तथा समाज में उपेक्षा, अजनबीपन, बनावटीपन तथा वैयक्तिकता की भावना बढ़ गई। व्यक्ति तथा समाज का मूल्यांकन मानवीय गुणोंपर न होकर आर्थिक स्थिति पर होने लगा, इस कारण सभी संबंधों का निर्णायक तत्त्व अर्थ बन गया है। पूँजीवादी समाज-व्यवस्था के कारण अर्थ प्रमुख और इन्सान को गौण माना गया है। इन्सान-इन्सान न रहकर क्रय-विक्रय की वस्तु बन गया है, जिसके कारण मानवीय संबंधों की नैतिकता भंग हो गई। परिणामत: राष्ट्रीय एकता, बंधुता तथा सद्भावना का भी ऱ्हास होता गया।

बीसवीं सदी के अंतिम दशक के हिंदी उपन्यासकारों ने अपने उपन्यासों में भी आर्थिक वातावरण का उचित निर्वाह किया हुआ दिखाई देता है। अलका सरावगी के उपन्यास इसके प्रमाण हैं। उनके उपन्यासों में आर्थिक वातावरण की पहल प्रखर मात्रा में दिखाई देती है जो यहाँ प्रस्तुत हैं -

अर्थ के कारण कई लोग 'किंग मेकर' कहलाते हैं। वे मन चाह या अपनी मर्जी से किसी को भी गद्दी पर बिठाते हैं और उठाते भी हैं। पैसे के कारण वह सत्ता को अपने हाथ का खिलौना बनाते हैं। स्वातंत्र्यपूर्वकाल में सत्ता ऐसे ही अर्थ केंद्रित लोगों के हाथ में थी। अलका सरावगी के 'कलि-कथा : वाया बाइपास' उपन्यास में इसी स्थिति का जिक्र मिलता है। प्रस्तुत उपन्यास का नायक किशोरबाबू जब सिराजुद्दौला के बारे में जानकारी प्राप्त करना चाहता था तब वह बड़ाबाजार की लाइब्रेरी में होनेवाले सत्यपालजी के पास जाता है। वहाँ सत्यपालजी उसे फाइले दिखाते हैं उस फाइल में अमीचंद और जगत सेठ का नाम देखते हैं। सत्यपालजी से अमीचंद के बारे में किशोर जानकारी प्राप्त तो करता है लेकिन जगतसेठ के बारे

में भी पूछता है तो सत्यपालजी बताते हैं कि "जगत सेठ हमारे अजीमगंज -जियागंज के ही थे। वे बंगाल के नवाबों और ईस्ट इंडिया कंपनी को रुपए उधार दिया करते थे। उनकी मर्जी के बिना कोई नवाब गद्दी पर न बैठ सकता था और न ही टिक सकता था - वे 'किंग मेकर' कहलाते थे। जगतसेठ की इतनी चलती थी कि एक बार ईस्ट इंडिया कंपनी और जगतसेठ के बीच रुपयों के भुगतान को लेकर झगड़ा हुआ, तो नवाब ने जगतसेठ के कहने पर कंपनी के वकील को गिरफ्तार कर लिया था। एड्मंड बर्क ने लिखा है कि जगतसेठों का कारोबार उतना ही था जितना 'बैंक ऑफ इंग्लैंड का।"[1] सत्यपालजी का यह कथन सत्ता अब अर्थ केंद्रित होना तथा अर्थ के कारण 'किंग मेकर' बन जानेवाले लोगों की मनमानी वृत्ति का परिचय देता है। यहाँ आर्थिक वातावरण की पहल प्रबल रूप में दिखाई देती है।

अकाल यानी वह काल जो मन के अनुरूप न हो। ऐसे काल में जब लोगों पर भूखों मरने की नौबत आती है तब उन्हें पैसों की जरुरत पड़ती हैं। उसी वक्त लोग अपने पेट की चिंता के कारण दूसरों की चिंता नहीं करते। परिणामत: वे अपने बच्चों को बेचने को भी कम नहीं करते। वे अपने जीवन में महँगा अनाज खरीदने के बदले मौत को चुनना पसंद करते हैं। अलका सरावगी का 'कलि-कथा : वाया बाइपास' उपन्यास इसका प्रमाण है। प्रस्तुत उपन्यास में अकाल के कारण अपना गाँव छोड़ आए वसंतलाल और रामविलास की भेंट हरिसन रोड़ के रघु पनवाड़ी की दुकान पर होती है। उन दोनों के दोस्ती का कारण यह है कि दोनों की पीड़ा भय तथा घबराहट एक ही थी कि 'मैं बिना कमाए कलकत्ते से वापस कैस जाऊँ?' बसंतलाल ने सरदार-शहर की तरह छपनिया के अकाल की मार से भागकर आनेवाले क़ाफिलों को देखता है, मरे हुए बैलों को देखता है, सुखे हुए पिंजरो पर समाज की पोटलियाँ लटकाएँ ठठरियों को देखता है। तब वह (बसंतलाल) कहता है - "लोगों ने भूख के मारे कच्चा बाजरा या चना ही फांक लिया। अपने बच्चे तक बेच डाले। कई जगह लाशों की कमर में अंटी में सिक्के बंधे हुए मिले। अनाज इतना महँगा हो गया था कि उसे खरीदने के लिए उन पैसों को खर्च करने के बजाय लोगों ने मौत को चुना। इतना मोल है पैसे का। कितने कष्ट से आता है पैसा। उसे यों ही कैसे गंवा दिया जाए।"[2] कहना आवश्यक नहीं कि बसंतलाल का कथन अकाल के कारण आए हुए आर्थिक वातावरण को अभिव्यक्त करता है।

---

1. अलका सरावगी - कलि-कथा : वाया बाइपास, पृष्ठ - 23
2. वही, पृष्ठ - 32

हमारे यहाँ देश के विकास के लिए कई योजनाओं का क्रियान्वयन किया गया। लेकिन हमारी सरकार पिछला कर्ज चुकाने के लिए अगला कर्ज लेती है। अलका सरावगी का 'कलि-कथा : वाया बाइपास' उपन्यास में इसी स्थिति को रेखांकित किया गया है। प्रस्तुत उपन्यास का किशोरबाबू का बेटा, किशोरबाबू को पंद्रह अगस्त के दिन किस्तों पर गाड़ी खरीदकर देता है। तब वे कहते हैं कि तुमने भविष्य के रुपए खर्च किए मतलब जो तुम आगे कमाओगे। तब उसका बेटा कहता है, सभी ऐसा व्यवहार करते हैं। गवर्नमेंट तक लाने लेती है। तब अमोलक कहता है - ''हाँ लेती है। और अगली बार फिर कर्ज लेती है पुराना कर्ज चुकाने के लिए। पाँच हजार करोड़ रुपए से चार हजार करोड़ रुपए के लगभग पिछला कर्ज चुकाने के लिए लेती है। अगर तुम किस्त नहीं भर पाए, तो क्या उसके लिए फिर माँगने निकलोगे ? और फिर उस कर्ज को चुकाने के लिए अगला कर्ज ?''[1] अमोलक का यह कथन देश के आर्थिक वातावरण जरिए देश के भविष्य के प्रति सज़ग करता है ही साथ ही वास्तविकता को भी दर्शाता है।

कई लोग कर्ज लेना नहीं जानते वे कर्ज को बोझ समझते हैं और उनकी ईमानदारी का परिचय हुए बिना नहीं रहता। जब वे कर्ज लेते हैं तो कर्ज चुकाए बिना नहीं रहते। अपने से कर्ज न चुकाने पर अपने बेटे तथा पोते को कर्ज चुकाने के लिए कहते हैं। अलका सरावगी का 'कलि-कथा : वाया बाइपास' उपन्यास में आर्थिक वातावरण का चित्रण मिलता है। इसी उपन्यास में किशोरबाबू अपने बेटे को रुपयों की महत्ता को स्पष्ट करते हुए कहते हैं - ''नहीं। लेकिन इनमें से किसी ने आज तक एक पैसा कर्ज नहीं लिया था। मैं तुम्हें बताना चाहता हूँ कि मारवाड़ियों ने इतना पैसा इसलिए कमाया कि उन्होंने कभी मौज-मस्ती में पैसा उड़ाने के लिए कर्ज नहीं लिया। कभी दूसरों के पैसे मारने की नीयत नहीं रखी। बाप मर गया तो बेटे ने कर्ज चुकाया। बेटा नहीं चुका पाया तो पोते ने चुकाया। और तिल-तिल कर के पैसा जोड़ा। माचिस की तीलियों तक का हिसाब रखते थे मेरे पिताजी।''[2] स्पष्ट है कि उक्त उद्धरण में आर्थिक वातावरण की पहल दृष्टिगोचर होती है।

समाज में पैसा कमाने के विभिन्न साधन होते हैं। शेयर मार्केट उनमें से एक है। इस शेयर मार्केट में व्यापारी लोग माल लेते हैं, 'स्टॉक' कर लाखों रुपए कमाते हैं। अलका सरावगी के 'शेष कादंबरी' उपन्यास में इसी आर्थिक वातावरण का चित्रण मिलता है। प्रस्तुत

1. अलका सरावगी - कलि-कथा : वाया बाइपास, पृष्ठ - 198
2. वही, पृष्ठ - 199

उपन्यास के मिस्टर वियोना अपनी 'इंडियन पीप शो' किताब के आठवें अध्याय के पाँच पीढ़ियाँ तथा अफीम का संबंध बताते हैं, जैसे - "चीन में अफीम को लेकर दो बड़ी लड़ाइयाँ हुई। अफीम की माँग कम होने लगी। बीसवीं सदी की शुरुआत तक ब्रिटीश सरकार को दुनिया के दूसरे देशों के दबाव से मजबूर होकर पूरे चीन को बरबाद कर रही अफीम का निर्यात बिलकुल घटा देना पड़ा। तुम्हारे दादाजी ने अफीम के फाटके से हाथ खींचकर शेयर मार्केट में ध्यान लगाया। पर मजे की बात देखो कि बीसवीं सदी की शुरुआत में ही यानी उन्नीस सौ नौ में अफीम का दाम गिरने पर सर सरूपचंद हुकुमचंद ने पच्चीस लाख की अफीम खरीद ली और दाम इतने बढ़े कि उन्होंने उनमें दो सौ लाख रुपए कमाए।"[1] उक्त उद्धरण ब्रिटिश काल की आर्थिक स्थिति को स्पष्ट करना है। साथ ही अंग्रेजों के काल में धनवान लोग किस प्रकार धन के बलपर ही धन कमाते थे। इसका भी परिचय मिलता है।

यह सच है कि अंग्रेजों का साम्राज्य असीम था। भारत देश पर भी उनकी सत्ता थी। उन्होंने भारत के बंगाल प्रांत में अपनी जड़े जमाकर अफीम के व्यापार में लाखो रुपए कमाए। भारत से सस्ती दामों में अफीम की आयात और चीन को महँगी दामों में निर्यात के कारण वे दोनों हाथों से लड्डू खाकर बड़े बन गए। प्रियंकर पालीवालने 'शेष कादम्बरी' के आर्थिक वातावरण के संदर्भ में लिखा है - "देशभर में नशा महामारी की तरह फैल गया और इंग्लैंड के खजाने भरने लगे। सन् 1832 तक बंगाल से होनेवाली अफीम की आपूर्ति से बरतानिया सरकार की आमदनी 9,81,293 (नौ लाख इक्यासी हजार दो सौ तिरानवे पाउण्ड) प्रतिवर्ष थी। भारत से सस्ती अफीम का आयात और चीन को महँगी अफीम का निर्यात यानी दोनों हाथों में लड्ड- मोटा मुनाफा।"[2] प्रियंकर पालीवाल का कथन अंग्रेजों की धन या अर्थ के प्रति होनेवाली लालसा को चित्रित करता है जो आर्थिक वातावरण का परिचय देता है।

हमारी सरकार ने जनता के विकास के लिए कई योजनाओं का क्रियान्वयन करती आई है, लेकिन इन योजनाओं के लिए कर्ज मात्र विदेश से लेती रही। परिणामत: हमारे देशपर सौ-सौ अरबों डॉलर का कर्ज हो गया है, यानी हर व्यक्ति पर सौ डॉलर का कर्ज है। अलका सरावगी का 'शेष कादंबरी' उपन्यास में इसका प्रमाण है। प्रस्तुत उपन्यास की रूबी दी

1. अलका सरावगी - शेष कादम्बरी, पृष्ठ - 47-48
2. सं. विनोद दास - वागर्थ, मासिक, जुलाई, 2002, पृष्ठ - 112

को 'परामर्श' ऑफिस एक महीना बंद रहने पर कई पत्र आते हैं। उसमें से सविता की चिट्ठी हाथ में लेकर वह सोचने लगती है - ''संसार में कोई एक वही दुखी तो नहीं, इस देश की एक अरब जनता में कम-से-कम आधी तो नून-तेल-लकड़ी के लिए ही दुखी होगी। कल ही अख़बार में पढ़ा था कि भारत की जनसंख्या एक अरब पर पहुँच गई है और विदेशी कर्ज सौ अरब डॉलर पर। यानी देश के हर आदमी पर सौ डॉलर कर्ज। 'देह धरे का दंड है' दुख तो सबको भोगना ही पड़ता है।''[1] प्रस्तुत कथन में उपन्यासकार ने वर्तमान भारतीय आर्थिक दयनीयता को वास्तव रूप प्रस्तुत किया है।

वस्तुत: हमारे समाज में सबसे बुरी प्रथा है - दहेज प्रथा। दहेज न देने के कारण ही कई लड़कियों का जीवन तीतर-बितर हो जाता है परंतु दहेज देने पर या पैसे के बूते पर कई ब्याह आज के समाज में होते हुए दिखाई देते हैं। अलका सरावगी के 'कोई बात नहीं' उपन्यास में ठीक इसी परिस्थिति का चित्रण मिलता है। प्रस्तुत उपन्यास की दादी इसका सशक्त उदाहरण है। दादी नाटी-पोटी और चेहरे पर चेचक के दाग होने के कारण उसके साथ कोई विवाह नहीं करता था, लेकिन पैसे के बूते पर दादी का विवाह शशांक के दादाजी के साथ होता है। स्वयं दादी के शब्दों में - '' मेरे हाथों के तो दो बेर भी उन्हें क्या भाते ? पर पैसे के जोर पर ब्याह हो गया। बाप के घर में पाट के काम से खूब आमदनी थी - दो-दो गाड़ियाँ, टेलिफोन, महाराज-नौकर सब थे।''[2] दादी के उक्त उद्धरण के जरिए लेखिका ने वर्तमान समाज में व्याप्त दहेज प्रथा पर करारा व्यंग्य किया है।

निष्कर्ष यह कि अलका सरावगी के आर्थिक वातावरग में विभिन्न स्थान तथा काल का चित्रण मिलता है। साथ ही 'अर्थ' के कारण लोगों का चलनेवाला मन-चाहा व्यवहार, पैसों के कारण आत्महत्या करना, बच्चों को बेचना, अंग्रेजों की मुनाफा खाने की वृत्ति, शादि-ब्याह तक पैसों के बूते पर करना तथा दहेज प्रथा बंद करना आदि बातें विवेच्य उपन्यासों में कलात्मकता के साथ प्रस्तुत की हैं।

---

1. अलका सरावगी - शेष कादम्बरी, पृष्ठ - 141
2. अलका सरावगी - कोई बात नहीं, पृष्ठ - 37

5.5 राजनीतिक वातावरण :

राजनीतिक वातावरण में स्थान, काल के साथ-साथ राजनेताओं की स्वार्थांध वृत्ति, मनमानी, पदलोलुपता, एकाधिकारशाही और धन, ऐश्वर्य, सत्ता को हथियाने या भोगने की वृत्ति आदि का चित्रण होता है। स्वाधीनता प्राप्ति के पहले हमने रामराज्य का सपना देखा था, परंतु वह सपना भुने हुए पापड़ की तरह चकनाचूर हो गया। इसका मूल कारण राजनीतिक लोग, राजनीतिक दल तथा सत्तासीन लोग है। समस्त परियोजनाओं का द्योतन करनेवाले इन राजनीतिज्ञों का प्रधान लक्ष्य 'प्राण जाए पर कुर्सी नहीं जाई' बन गया हैं। सत्ता प्राप्ति की आसक्ति के कारण समाज में गंदी राजनीति फैल गई, जिसका चित्रण उपन्यास के राजनीतिक वातावरण में होता है।

राजनीतिज्ञ समाज को बनाने के लिए चले, परंतु अब इन्सान की भूमिका, लगाव और प्रेरणा स्त्रोत की बातें भूल गए। परिणामत: उन पर अनुशासनहीनता, दिशाहीनता और पैसे कमाने की राजनीति हावी हो गई। वह पैसे चाहे कौन से भी मार्ग से क्यों न मिले, चाहे अच्छे या चाहे बुरे। ये सत्तासीन लोग अपनी हित की दिशा को जानते हैं लेकिन जनता के हित की दिशा के बारे में दिशाहीन हो गये हैं। विरोधी दल भी जनता के हित की राजनीति भूलकर सत्ताप्राप्ति की राजनीति को अपनाता हैं, जिसके कारण समाज जीवन में बिखराव, पद लोलुपता, नैराश्य, कुंठा, मतभेद, स्वार्थ, असंतोष आर्थिक विषमता, भाई-भतिजावाद और जातिवाद आदि फैल गया है। जिसके परिणामस्वरूप राजनीति में दो गुट हो गए हैं - एक सत्तासीन और दूसरा सत्ताहीन। इन वर्गों के कारण व्यक्ति तथा समाज में बिखराव तथा टूटन की प्रवृत्ति ज्यादा मात्रा में दिखाई देती है। राजनीति में जनहित गौण और सत्ता प्रमुख रही है। राजनीतिक वातावरण का चित्रण रचनओं में होना इसी का परिणाम कहना होगा। बीसवीं सदी के अंतिम दशक के हिंदी उपन्यासकारों के उपन्यासों में राजनीतिक वातावरण की पहल प्रखर मात्रा में दिखाई देने लगी है। अलका सरावगी के उपन्यास भी इसके लिए अपवाद नहीं है। उनके उपन्यासों में चित्रित राजनीतिक वातावरण का विवेचन-विश्लेषण यहाँ प्रस्तुत है -

सत्ता के कारण दुनिया में अनेक लड़ाईयाँ होती रही। कलकत्ते पर जर्मनी, अँग्रेज तथा रूस आदि ने किए हुए हमले इसी का परिणाम मानना होगा। कलकत्ते के कम्युनिस्ट भी ब्रिटिश सरकार का साथ देते थे। लेकिन नाजियों के विरूद्‌ध युद्‌ध में देश को आजादी मिले बिना देश की काँग्रेस ब्रिटीश साम्राज्य का साथ न देने का निश्चय कर चुकी थी। अलका सरावगी के 'कलि-कथा : वाया बाइपास' उपन्यास मे इसी स्थिति का जिक्र मिलता है। सन् 1942 में युद्‌ध के कारण, कलकत्ते में आतंक का माहौल फैल गया था। सभी लोग अपने-अपने रिश्तेदार के पास जाने के लिए विवश थे। परंतु किशोर भी अपनी मामा की राय जानकर कलकत्ता रहना चाहता है। इसी परिस्थिति का चित्रण करते हुए लेखिका ने 'कलि-कथा : वाया बाइपास' उपन्यास में लिखा है - " तभी जर्मनी ने रूस पर हमला कर दिया। इससे कलकत्ते के राजनीतिक माहौल में एक दूसरी सनसनी फैल गई। कलकत्ते में कम्युनिस्ट अब ब्रिटीश सरकार के पक्ष में बोलने लगे-फासीवाद के खिलाफ 'लोक युद्‌ध' में वे अँग्रेजों का साथ दे रहे थे। नाजियों के विरूद्‌ध होने के बावजूद कांग्रेस देश को आजादी मिले बिना युद्‌ध में ब्रिटिश साम्राज्य का साथ न देने का निश्चय कर चुकी थी।"[1] उपर्युक्त उद्‌धरण सन् 1942 के कलकत्ते के राजनीतिक माहौल का परिचय देता है।

हमारे यहाँ के कई नेता अँग्रेजों के दलाल थे। ये नेतागण गांधी टोपी पहनकर जनता पर जुल्म करते थे। इतना ही नहीं नेहरू ने भी सारे अफरसों को ज्यों का त्यों रखा। परिणामत: उन अफसरों ने अँग्रेजों का साथ देकर हम पर ही जुल्म किए। अलका सरावगी का 'कलि-कथा : वाया बाइपास' उपन्यास इसका प्रमाण है। प्रस्तुत उपन्यास के पंडित जी किशोर के बाइपास सर्जरी के पश्चात् पहली बार मिलने जाते हैं, तब वे अमोलक के बारे में किशोरबाबू को कहते हैं कि अमोलक अब बहक गया है। वह बड़े-बड़े मंत्रियों को चिट्‌ठी लिखता है, जैसे - "नेहरू को, राजेंदबाबू को, बड़े-बड़े मंत्रियों को। मुझे एक बार सड़क पर मिला तो कहने लगा - सारे अँग्रेजों के पिट्‌ठू और दलाल गांधी-टोपी पहनकर कांग्रेस में घूस आए हैं। नेहरू ने वे सारे अफसर भी ज्यों-के-त्यों रख लिए हैं, जिन्होंने अंग्रेजों के साथ मिलकर हम पर जुल्म किए थे।"[2] कहना आवश्यक नहीं कि हमारे नेतागण सत्ता तथा स्वार्थांधता के कारण अँग्रेजों के दलाल, पिट्‌ठू बन गए थे।

---

1. अलका सरावगी - कलि-कथा : वाया बाइपास, पृष्ठ - 118
2. वही, पृष्ठ - 161

यह बात तो सच है कि अँग्रेजी राज में अँग्रेजों ने हिंदुस्तानियों पर गोलियाँ चलाई, लेकिन अब हमारी सरकार भी हम पर गोली चला रही है। तो सवाल यह उठता है कि इसे कौनसा राज मानना होगा ? अलका सरावगी के 'कलि-कथा : वाया बाइपास' उपन्यास मे पंडितजी अमोलक के बारे में चर्चा करते हैं। किशोरबाबू को इन बातों में दिलचस्पी लगती है। किशोरबाबू की गहरी दिलचस्पी जानकर पंडितजी उत्साह से कहते हैं - "उन दिनों मुझे मिला, तो कहने लगा 'पंडित जी आए बताइए कि अँग्रेजी राज में सरकार हिंदुस्तानियों पर गोली चलाती थी, पर खुद हमारी सरकार जब अपने ही लोगों पर गोली चलवाए, तो इसे आप कौन-सा राज कहेंगे ? ये लोग भी वही कर रहे हैं, जो नेहरू के समय से यहाँ हो रहा है'।"[1] उपर्युक्त कथन से स्पष्ट होता है कि सत्ताप्राप्ति के लिए हमारी सरकार अंग्रेजों से भी बदतर व्यवहार करती थी। जिसके माध्यम से उनकी स्वार्थी तथा सत्तालोलुपता के कारण राजनीतिक वातावरण का भी परिचय मिलता है।

हमारी सरकार ने शिक्षा के लिए कई अभियान चलाए। जिन्होंने शिक्षा का अर्जन किया वे शिक्षित कहलाने लगे और जिन्होंने नहीं किया वे अशिक्षित कहलाने लगे। लेकिन अब यह विषमता शिक्षा के स्तर पर न होकर राजनीतिक पद ग्रहण पर होने लगी है। अलका सरावगी के 'कलि-कथा : वाया बाइपास' उपन्यास में इसी राजनीतिक वातावरण का परिचय मिलता है। प्रस्तुत उपन्यास के किशोरबाबू की बाइपास सर्जरी के बाद जब बार-बार हाथ धोना, शहर में घूमना आदि पागलों जैसी हरकतें करने पर उनकी पत्नी और बेटा उन्हें फॉरेन रिटर्न्ड डॉक्टर को दिखाते हैं। उन दोनों में कई सवाल-जवाब होते हैं। किशोरबाबू डॉक्टर को एक सवाल पुछते हैं - राबड़ी देवी और सोनिया गांधी में क्या अंतर है। तब वे डॉक्टर बताते हैं कि एक अशिक्षित है और दूसरी शिक्षित है। तब ठठ़ाकर-हँसकर किशोरबाबू कहते हैं - "देखो अमोलक, मैं पहले ही जानता था कि यह बेवकूफ यही उत्तर देगा। फॉरेन रिटर्न्ड डॉक्टर। कहता है दोनों में अंतर-ही-अंतर है। दोनों में अंतर तो इतना ही है कि एक का पति मुख्यमंत्री था और दूसरी का पति प्रधानमंत्री। बाकी कोई अंतर नहीं। 'जस्ट इमैजिन अमोलक' इस देश का अंग्रेजी पढ़ा-लिखा पेशेवर डॉक्टर भी 'पोलिटिकली' इतना मूर्ख है।"[2] इससे स्पष्ट होने में देर नहीं लगती कि आज सत्ता या पद के आधारपर लोगों में भेद किया जाने लगा

---

1. अलका सरावगी - कलि-कथा : वाया बाइपास, पृष्ठ - 162
2. वही, पृष्ठ - 183-184

है। साथ ही पोलिटिकली मूर्ख डॉक्टर की भी पोल खोल दी है। जिसके कारण प्रस्तुत उपन्यास का वातावरण राजनीतिक बन गया है।

कई लोग गांधी जी के अहिंसा के मार्ग के कारण प्रेरित हुए हैं लेकिन कई लोग निराश भी हुए। परिणामत: उन्होंने कम्युनिस्ट लोगों के लिए काम करना तक छोड़ दिया। उन्हें इन कम्युनिस्टों की स्थापना, सत्यभक्त का साथ देना नहीं आता। अत: वे छोटे-मोटे काम कर अपना जीवन-यापन करते हैं। अलका सरावगी के 'शेष कादम्बरी' उपन्यास में इसी राजनीतिक वातावरण का जिक्र मिलता है। प्रस्तुत उपन्यास में रूबी दी कादम्बरी ने भेजा हुआ रिपोर्ट पढ़ती है। - ''1923 में चित्तरंजन दास ने गाँधी के अहिंसावाद का पिछलग्गू बनकर एम.एन. रॉय को ऐसा निराश किया, कि उन्होंने काँग्रेस के भीतर-भीतर कम्युनिस्टों का एक छिपा गुट बनाकर काम करते रहने का अपना पुराना इरादा छोड़ दिया। 1924 में भारत में कम्युनिस्ट पार्टी की स्थापना की कार्यवाही में 'सत्यभक्त' का साथ देने के लिए देवीदत्त को एम्.एन्. रॉय ने भारत भेजा, पर बात कुछ जमी नहीं। उसके बाद कलकत्ते में रहकर देवीदत्त अपने गुरु को उनकी प्रतिद्वंद्वी बनती जा रही ब्रिटिश कम्युनिस्ट पार्टी की गतिविधियों की रिपोर्ट भेजने का काम करते रहे।''[1] उक्त उद्धरण से स्पष्ट होता है कि अहिंसावाद तथा सत्य जैसी बातें अब लोगों के गले नहीं उतरती। कम्युनिस्ट की स्थापना तथा सत्यभक्त का साथ देना उन्हें नहीं जमता ताकि वे छोटे-मोटे काम करते रहते हैं। कहना सही होगा कि प्रस्तुत उपन्यास में राजनीतिक वातावरण का चित्रण कलात्मकता से प्रस्तुत किया है।

कई लोग सत्ता हथियाने के लिए अपना नाम गांधी जी के नाम से जोड़ते हैं और लोगों को भुलाकर चुनाव जीतते हैं। आज भारत का राजतंत्र पुराने राजा-रानियों को सत्ता के रूप में पचाता है लेकिन नए-नए राजा-रानियों को नहीं पचा पाता। अलका सरावगी के 'शेष कादम्बरी' उपन्यास में इसी स्थिति को दिखाया है। प्रस्तुत उपन्यास की कादम्बरी देवीदत्त मामा की रपट का बाकी हिस्सा रूबी दी को कुरियर से भेजती है। 'एक शताद्बी की खोज: वाया एक अदद आदमी' नामक रपट देखकर रूबी दी को आश्चर्य होता है। रुबी दी को मालूम है कि इस रपट को पढ़ते वक्त उत्सुकता, हीनभावना, अभिमान, और हताशा एक साथ अनुभव होगा फिर भी वह पढ़ती हैं - '' 1963 से 1967 के बीच के सालों में यानी जब तक राम

1. अलका सरावगी - शेष कादम्बरी, पृष्ठ - 98

मनोहर लोहिया पार्लियामेंट के सदस्य रहे, देवीदत्त ने पार्लियामेंट की दर्शक-दीर्घा को आबाद किया। लोहिया की संसद में एक भी बहस उनसे नहीं छूटी। 1967 के आम चुनाव में देवीदत्त खुद एक निर्दलीय उम्मीदवार के रूप में उत्तर प्रदेश के चन्दौली क्षेत्र से स्वराज गाँधी के नाम से चुनाव लड़ने खड़े हुए। इसके पहले कोर्ट में नाम बदलने के लिए एक एफिडेविट के लिए अर्जी देते हुए उन्होंने साबित किया था कि बचपन में रामदास गाँधी नाम के एक गुजराती बनिए ने उनको गोद लिया था। इस बात को अख़बारों ने खूब उछाला कि एक आदमी इसलिए गाँधी नाम से चुनाव लड़ रहा है क्योंकि वह दिखाना चाहता है कि 'कुछ' लोग गाँधी के नाम को कैसा भुना रहे हैं। लोकतंत्र के अन्दर पाँव फैलाते राजतन्त्र का पर्दाफाश करना ही देवीदत्त का लक्ष्य था, चुनाव जीतना नहीं। लोकसभा में जब लोहिया ने कहा कि भारत राजतन्त्र राजा-रानियों को पचा लेगा, पर ये जो नए-नए राजा-रानियाँ निकलते हैं - कोई तथाकथित बड़ा आदमी पैदा हुआ, उसके लडके-लड़कियाँ आ खड़े होते हैं, उनका क्या होगा, तो देवीदत्त ने दर्शक-दीर्घा से इतनी तालियाँ बजाई कि संसद का गोल गुम्बद बड़ी देर तक गूँजता रहा।''[1] उक्त कथन से राजनीतिक लोगों की संसद में बहस, चुनाव के कारण गांधी जैसे नेताओं से नाता जोड़ना, लोकतंत्र के अंदर पाँव फैले राजतंत्र का पर्दाफाश, लोगों की पुराने स्वार्थी नेताओं के प्रति होनेवाली लगन और नई पीढ़ी का राजनीति में अस्वीकार, तत्कालीन राजनीतिक वातावरण स्पष्ट हुआ हैं। 'कोई बात नहीं' उपन्यास में राजनीतिक वातावरण न के बराबर है।

निष्कर्षत : कहना सही होगा कि राजनीतिक वातावरण में भारत के विभिन्न स्थानों तथा कलकत्ते के विभिन्न स्थानों का चित्रण प्रस्तुत है। आजादी के पहले और बाद के समय का चित्रण कलात्मकता से अंकित किया है। साथ ही राजनीतिक नेताओं की स्वार्थांधता, दलबदलू वृत्ति और जुल्म करना आदि बातें 'कलि-कथा : वाया बाइपास' तथा 'शेष कादम्बरी' उपन्यास के राजनीतिक वातावरण में कलात्मकता के साथ अंकित हुई हैं। 'कोई बात नहीं' उपन्यास में राजनीतिक वातावरण का अभाव है।

---

1. अलका सरावगी - शेष कादम्बरी, पृष्ठ - 174

5.6 समन्वित निष्कर्ष :

अलका सरावगी के उपन्यासों में देशकाल वातावरण सृष्टि की कलात्मकता का मूल्यांकन करने के उपरांत जो तथ्य सामने आए हैं, वे इस प्रकार हैं -

अलका सरावगी के उपन्यासों में आजादी के पूर्ववर्ती और परवर्ती काल के चित्रण के साथ-साथ कलकत्ते के विभिन्न स्थानों का चित्रण कलात्मक लक्षित होता है। सती-प्रथा, बलि-प्रथा, दहेज-प्रथा, अंधविश्वास, पूजा-पाठ आदि प्रथाओं का पर्दाफाश करना सामाजिक वातावरण का महत्त्वपूर्ण उद्देश्य रहा है। विवेच्य उपन्यासों में मारवाड़ी समाज का खान-पान, शादी-ब्याह, वेशभूषा, रीति-रिवाज तथा रहन-सहन आदि का चित्रण भी मिलता है। अलका सरावगी के उपन्यासों में ऐतिहासिक वातावरण के अंतर्गत देशों के विभिन्न स्थानों के साथ-साथ आजादी के पहले और बाद का चित्रण कलात्मकता के साथ अंकित है। साथ ही सत्ता प्राप्ति की होड़, पदलोलुपता, धोखाधड़ी, नफरत, युद्ध का माहौल आदि का चित्रण मिलता है।

विवेच्य उपन्यासों के महानगरीय वातावरण में 18 शताब्दी तथा सन् 1941 के काल के साथ-साथ विभिन्न देशों तथा कलकत्ते के विभिन्न भागों का चित्रण मिलता है। महानगरों में आतंक के कारण होनेवाले टूटन, बिखराव के साथ-साथ, फ्लैटों की जिंदगी में फैलनेवाली गंदगी, आवास तथा झूठापन आदि बातों का चित्रण महानगरीय वातावरण के अंतर्गत कलात्मक दृष्टिगत होता है। अलका सरावगी के उपन्यासों के आर्थिक वातावरण में चीन, छपनिया, भारत के बंगाल प्रांत के चित्रण के साथ-साथ आजादी के पूर्ववर्ती काल का चित्रण कलात्मक परिलक्षित होता है। अर्थ के कारण लोगों का किंग मेकर बनना, मनचाहा व्यवहार करना, शादी-ब्याह होना तथा आत्महत्या करना आदि बातों का चित्रण कलात्मक लक्षित होता है। देश का सूद पर पैसे लेना और पिछला कर्ज चुकाने के लिए फिर कर्ज लेना निश्चय ही देश को विनाश की ओर ले जाने का संकेत हैं। इससे बचना होगा नहीं तो विनाश अटल है।

राजनीतिक वातावरण का चित्रण 'कलि-कथा : वाया बाइपास' तथा 'शेष कादम्बरी' उपन्यासों में मिलता है। भारत के विभिन्न स्थानों के तथा कलकत्ते के विभिन्न

भागों के साथ-साथ आजादी के पूर्ववर्ती और परवर्ती काल का चित्रण कलात्मक दृष्टिगोचर होता है। नेताओं की स्वार्थांधता, दलबदलू वृत्ति, नाम बदलकर चुनाव लड़ने की वृत्ति तथा लोकतंत्र के अंदर फैले राजतंत्र का पर्दाफाश करना आदि बातों का चित्रण राजनीतिक वातावरण में मिलता है। अलका सरावगी के 'कोई बात नहीं' उपन्यास में राजनीतिक वातावरण का अभाव दृष्टिगत होता है।

अंततः कहना सही होगा कि विवेच्य उपन्यासों में देशकाल वातावरण की सृष्टि का चित्रण कलात्मक परिलक्षित होता है इसमें संदेह नहीं।

* * * *